© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 07 | October- December 2017

नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक समस्याएँ

अनीता, प्राथमिक शिक्षिका, हरिजन बस्ती, जीन्द (हरियाणा)

नुक्कड़ नाटक हमारे देश के लिए कोई नई चीज नहीं है। देश के प्रत्येक अंचल में नाटकों का प्रदर्शन किसी न किसी रूप में खुले आकाश तले मैदानों और चौपालों में होता रहा है। इन नाटकों के माध्यम से न केवल पौराणिक कथाएँ एवं सामाजिक कार्यकलाप अपितु जन समस्याओं एवं लोकोपयोगी संदेशों को प्रसारित करने के कार्य भी होते रहे हैं। नुक्कड़ नाटक इन पारंपरिक नाटकों का ही परिवर्तित रूप है। "नुक्कड़ नाटक: परंपरा और प्रयोग" शीर्षक के अंतर्गप 'डॉ० सनत कुमार' लिखते हैं-- "मध्य काल में उत्तर भारत में रामलीला और रासलीला, नाच और नौटंकी, सांग आदि लोक कला के विभिन्न रूपों ने जनमानस में अपना निश्चित स्थान बनाया है। इन लोक नाट्यों को खेलने वाले सामान्य जनता के ही कलाकार होते आए हैं। नुक्कड़ नाटक की प्रेरणा तथा परंपरा इन्हीं नाट्य रूपों से संबंधित है।"1 आज हमारे यहाँ प्रचलित नुक्कड़ नाटक की जड़ें कहीं बहुत गहरे मेंअपनी समृद्ध लोक नाट्य परंपरा से जुड़ी हैं। चारों ओर बैठे दर्शकों से संवाद और उनकी सांझेदारी , सज्जाविहीन खुला रंगस्थल, सामाजिक राजनैतिक कमैंट जैसी नुक्कड़ नाटक की कितनी ही विशेषताएँ हैं जो प्रत्यक्षतः हमारे लोक नाटकों से संबद्ध या प्रभावित हैं। लोकनाटक से रूपगत साम्य रखते हुए भी नुक्कड़ नाटक अपनी स्वतंत्र पहचान के साथ अवतरित हुए हैं। लोक नाट्यों की प्रस्तुति परंपरा नुक्कड़ नाटक के बहुत निकट है।और उस परंपरा से नुक्कड़ नाटक प्रभावित भी हैं परंतु फिर भी दोनों में एक बुनियादी अंतर यह है कि नुक्कड़ नाटक एक सामाजिक-राजनैतिक चेतना और सरोकार को एक आंदोलन के रूप में लेकर चला है जबकि लोक नाट्य परंपरा जनता के मनोरंजन के लिए रही है।

अस्सी के दशक में आम जनता को उनके अधिकारों के प्रति सचेत करने , शोषणधर्मी व्यवस्था का विरोध करने, सामाजिक परिवर्तन एवं जनाक्रोश को अभिव्यक्ति देने हेतू नाटक प्रेक्षाग्रहों से निकल कर सड़क पर आ गया और जन भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन गया।

नुक्कड़ नाटक सामान्य जनों के लिए किए जाते हैं। नाटक को सामान्य जन से जोड़ने का कार्य नुक्कड़ नाटक अत्यंत सरल तरीके से करता है। यह एक जीवंत कला है जो समाजिक समस्याओं के प्रति जागरुक करने के लिए अस्तित्व में आई। यह जनसाधारण के बीच से निकली हुई जनसाधारण की ही आवाज है। इसका उद्देश्य ही दर्शक को जागृत करना है और बदलाव के लिए संघर्ष करने का आह्वान आम आदमी को देना है। जन साधारण के बीच पहुँचकर नाटक के माध्यम से जन स्वर को बुलंद करना और जन हितों का हनन करने वाली ताकतों के खिलाफ संघर्ष छेड़ना इसकी प्रमुखता है। इस विषय में 'डॉ० जयदेव तनेजा' का कथन है कि "मंचमुक्त सड़क या नुक्कड़ नाटकों की सक्रियता जंगल की आग की तरह फैलती जा रही है। सामाजिक, सार्थक और उत्तेजक कथ्य वाले इन जन जागरण प्रधान प्रदर्शनों ने जन सामान्य में नई हलचल पैदा की है।"2 नुक्कड़ नाटक के बारे में जर्मन नाटककार ब्रेख्त ने कहा है कि "नुक्कड़ नाटक बहुत पुरानी विधा है। इसकी उत्पत्ति, इसका उद्देश्य एवं लक्ष्य घरेलू है। इसमें कोई शक नहीं की यह समाज के लिए महत्व की चीज है जो उसके सभी तत्त्वों पर छाया हुआ है।"3 जन नाट्य मंच दिल्ली के नुक्कड़ रंगकर्मी श्री अरुण शर्मा कहते हैं- "नुक्कड़ नाटक बाकायदा एक विशिष्ट फॉर्म है जिसमें हमारे शास्त्रीय, पारंपरिक और लोक रंगमंच की सारी खूबियाँ मौजूद हैं।"4 आज जिस रूप में हम नुक्कड़ नाटकों को जानते हैं, उनका इतिहास भारत के स्वाधीनता संग्राम के दौरान कौमी तरानों, प्रभात फेरियों और जुलूसों के रूप में देखा जा सकता है। समाज और काल के प्रति यह नाट्य विधा जागरूक है। नुक्कड़ नाटक के बारे में प्रसिद्ध रंगकर्मी सफदर हाशमी कहते हैं कि "नुक्कड़ नाटक आधुनिक समाज के अंतर्विरोधों और उनकी मुखालफत का माध्यम है। नुक्कड़ नाटक भले ही एक समय एक राजनैतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया गया हो, परंतु अब वह बढ़ते-बढ़ते राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं तक पहुँच गया है।"5 नुक्कड़ नाटकों के उद्भव में पाश्चात्य प्रभाव, लोक नाट्य परंपरा, प्रगतिशील आंदोलन का उद्भव, भारतीय जन नाट्य मंच आदि ने प्रेरक परिस्थितियों का कार्य किया है। जन नाट्य मंच(1973), समुदाया, बैंगलुरू (1975), निशांत नाट्य मंच दिल्ली, दिशा जन सांस्कृतिक मंच बिहार(1978), दस्ता इलाहाबाद (1979), तीसरा थियेटर (1960), अभिनव जन सांस्कृतिक मंच, युवानीति भोजपुर (1977), थियेटर यूनियन दिल्ली (1970) आदि प्रमुख संस्थाओं के अलावा अन्य बहुत सारी संस्थाएँ नुक्कड़

नाटक कर रही हैं। स्कूलों, कॉलेजों तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं में भी विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर आधारित नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किए जा रहे हैं। भारत में नुक्कड़ नाटक के जन्मदाता सफदर हाशमी, रमेश उपाध्याय, शिवराम, स्वयंप्रकाश, अरविंद गौड़, अनुराधा कपूर आदि हिंदी के ऐसे प्रमुख नुक्कड़ नाटककार हैं, जिन्होंने नुक्कड़ नाटक की विधा को अधिक धारदार और प्रभावशाली बनाया। इनका मानना था कि नुक्कड़ नाटक एक आवश्यक संदेश के प्रेषण के लिए हैं। नुक्कड़ नाटक को जनप्रिय नाट्य विधा बनाने में इन नाटककारों ने सराहनीय काम किया है। इनके अलावा हिंदी के कुछ अन्य नाटककारों ने भी इस क्षेत्र में अपनी कामयाबी दिखाई है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के नाटक 'बकरी' में नुक्कड़ नाटक देखा जा सकता है। हबीब तनवीर के कुछ नाटकों में भी नुक्कड़ नाटकों की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। हिंदी के अन्य नुक्कड़ नाटककारों में चंद्रेश, कुसुम कुमार, असगर वजाहत आजदि भी उल्लेखनीय नाम हैं। अंततः नुक्कड़ नाटक एक व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है बल्कि उनके मंचन के पीछे जन समाज ही रहता है। वास्तव में नुक्कड़ नाट्य विधा सामूहिकता से उपजी है।

नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक समस्याएँ:-

नुक्कड़ नाटक जनता से कथ्य ग्रहण करके उसे जनता को ही सौंप देते हैं। इसका कथ्य सामाजिक यथार्थ को व्यापकता में ग्रहण करता है। सामाजिक समस्याओं को नुक्कड़ नाटकों में इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि दर्शक स्वयं अपने हालात पर विचार करने के लिए विवश हो जाएँ और कुछ करने के लिए प्रेरित हों। नुक्कड़ नाटकों में सामाजिक समस्याओं के चित्रण के साथ-साथ उन समस्याओं के विरुद्ध लड़ने का आह्वान भी होता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि नुक्कड़ नाटकों का उद्देश्य ही जन सामान्य में चेतना जगाना है। नुक्कड़ नाटकों में समाज में व्याप्त अधिकांश समस्याओं को प्रदर्शित किया जाता है।

किसानों व मजदूरों की समस्याओं का चित्रण:----

समाज में व्याप्त असमानता व आन्याय के लिए जिम्मेदार शोषक वर्ग की वास्तविकता और राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ आधार प्रदान करने वाले किसानों व मजदूरों को नुक्कड़ नाटकों में मूल संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया जाता है। जन नाट्य मंच द्वारा 'गाँव से शहर तक', 'मशीन', 'जब चोर बने कोतवाल', 'एक मजदूर की स्वाभाविक मौत', 'अँधेरा आफताब माँगेगा', 'शब्बो', 'हल्ला बोल', 'समरथ को नहीं दोष गुसाईं', 'संघर्ष करेंगे जीतेंगे', 'जनता पागल हो गई है आदि आनेक नुक्कड़ नाटकों ने किसानों व मजदूरों की वास्तविक स्थिति को उभारा है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप भारत में जो आर्थिक नीति अस्तित्व में आई उसके तहत किसानों व मजदूरों को बहुत यातनाएँ झेलनी पड़ी। दिन रात जी तोड़ मेहनत करने के बाद भी आर्थिक तंगहाली मुँह चिढ़ाती है। असीमित मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है वो अलग। आजादी के इतने सालों के बाद भी देश के कई गाँवों में आज भी असंख्य ऐसे बदनसीब किसान हैं जो जीवन की मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हैं। सारी दुनिया का पेट भरने वाले किसान खुद दो जून की भरपेट रोटी को तरसने के लिए मजबूर हैं। मौसम की मार , महंगे रासायनिक खाद, अपर्याप्त समर्थन मूल्य आदि के कारण कर्ज के बोझ तले दब कर किसान अंततः आत्महत्या करने को विवश हो जाता है। कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की विवशता, घुटन एवं मिलमालिकों की मनमानी को भी नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से समाज के सामने रखा जाता है।

2. शैक्षिक क्षेत्र में व्याप्त अनीतियों का चित्रण :--

समाज सुधार में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसीलिए शिक्षा की आवश्यकता और प्रधानता पर बल देने की प्रवृति नुक्कड़ नाटककारों की रही है। शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके सामाजिक परिवर्तन का आधार तैयार करती है। शिक्षा में दुनिया को बदलने की क्षमता निहित है। शिक्षा जीवन के अंतर्विरोधों को पहचान कर नए समाज के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साक्षरता अभियान पर आधारित जन नाट्य मंच दिल्ली का 'पढ़ना लिखना सीखो' एक उल्लेखनीय नुक्कड़ नाटक है। इस नुक्कड़ नाटक में एक ऐसे गाँव का चित्रण किया गया है जहाँ गाँव वालों का सारा ध्यान दो वक्त की रोटी जुटाने में लगा रहता है। ऐसे लोग सहज ही प्रश्न करते हैं कि - "जब पेट की भूख आँखें नोचती है तब दिमाग के बारे में कौन सोचता है।" उस गाँव में कुछ ऐसे लोग भी हैं जो अपने बच्चों को, विशेषकर लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए तैयार नहीं हैं। उनके लिए शिक्षा का महत्व अत्यंत गौण है। उनका मानना है कि पढ़ लिखकर भी कुछ नहीं बदलने वाला। इसी प्रकार 'राजा का बाजा' नुक्कड़ नाटक में शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले भ्रष्टाचार एवं अनैतिकता को उजागर किया गया है। इसमें दर्शाया गया है कि विभाग के उच्च पदों पर विराजमान लोग समाज के उच्च एवं प्रभावशाली वर्ग के हितों की पूर्ति के लिए अपने पदों एवं शक्तियों

का दुरुपयोग करते हैं। इसी तरह से कई नुक्कड़ नाटकों में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त अनीतियों एवं विद्यार्थियों पर होने वाले अत्याचारों की पोल खोली गई है।

नुक्कड़ नाटकों में नारी संबंधित समस्याएँ:--

भारत में ही नहीं अपितु विश्व भर में नारी शोषण की परंपरा पुराने जमाने से चली आ रही है। हमारी पौराणिक कथाओं में इसके सीता, अहिल्या, रेणुका, द्रौपदी आदि कई उदाहरण मिलते हैं। यही स्थिति बाद के अन्य कालों में भी चलती रही। स्वतंत्रता के बाद भारत में नारियों की परंपरागत स्थिति में काफी परिवर्तन आया। नारी वर्ग ने पुरुष के वर्चस्व से अपनी आजादी के लिए संघर्ष करना आरंभ किया। रुढ़िजाल से मुक्त होने की दिशा में स्वाभिमान के साथ सक्रियता दिखाई। जहाँ पुराने जमाने में स्त्रियों का दायित्व मात्र परिवार को संभालना था, औद्योगीकरण के फलस्वरूप वह कामकाजी भी हो गई और उसका दायित्व दुगुना हो गया। इस नई दुनिया में नारी को कई यातनाएँ झेलनी पड़ी। नुक्कड़ नाटक नारी शोषण के हर पहलू को मूर्त करते हैं। नारी की विभिन्न भूमिकाओं में होने वाले शोषण एवं अत्याचार का अंकन नुक्कड़ नाटकों में किया जाता है। 'आर्तनाद', 'जीना है तो लड़ना होगा', 'औरत', 'ये भी हिंसा है', आदि नुक्कड़ नाटकों में नारी के शारीरिक शोषण के विरुद्ध स्वर उभरा है। हमारे समाज में अधिकांश सामंती मानसिकता ही चलती है, जो नारी को आवश्यक रूप से किसी पुरुष के नियंत्रण में रखने की पक्षधर है। इसी व्यवस्था के तहत स्त्री की सार्थकता उसे एक अच्छा पति मिलने पर ही मानी जाती है और पति के अधीन रहना ही औरत की नियति मानी जाती है। जो औरत इसके विरुद्ध आचरण करती है उसे उसे पुरुषवादी समाज में हमेशा निशाने पर रखा जाता है। औरतों को घूर कर देखना तो मानो पुरुष अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। यहाँ तक कि एक छोटी बच्ची के सामने भी लोग अपनी कामलिप्सा भरी नजरों को त्याग नहीं पाते हैं। सबसे दुख की बात यह है कि जब भी औरत के मान-सम्मान पर आँच आती है तब अधिकतर मामलों में कसूरवार पुरुष कोई अपना करीबी ही होता है। इन सबके बावजूद शीलभंग होने का जिम्मेदार औरत को ही ठहराया जाता है। समाज की इस मानसिकता के विरद्ध आवाज उठाने का प्रयास नुक्कड़ नाटकों में किया जाता है।

ऐसी ही एक समस्या लड़का-लड़की में भेदभाव भी है। जिसके खिलाफ नुक्कड़ नाटक आक्रोश व्यक्त करते हैं। बचपन से ही लड़की से दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। यहाँ तक कि बच्ची के जन्म पर भी घरवाले खुशी नहीं मनाते। 'बच्ची आई है' नुक्कड़ नाटक में इसी मानसिकता पर चोट की गई है। हमारे समाज में अधिकांश परिवार ऐसे हैं जिनमें लड़का लड़की के पालन पोषण में भी भेदभाव किया जाता है। लड़का जो चाहे कर सकता है, परंतु लड़की को ऐसी आजादी नहीं दी जाती। इसी प्रकार विवाह के उपरांत नारी जीवन की समस्याओं को गिन पाना ही अपने आप में कठिन कार्य है। दहेज के नाम पर सास-ससुर के द्वारा किया जाने वाला शोषण और पति की दुष्प्रवृत्तियों को सहन करने के लिए विवश नारी वर्ग की त्रासद जिंदगी का चित्रण भी नुक्कड़ नाटकों में देखा जा सकता है। औरत को सामंती संस्कारों की चक्की में पीसा जाता है। दहेज के लिए प्रताड़ित होने पर भी स्त्री को प्रतिवाद किए बिना घर बाहर के दायित्वों को निभाना पड़ता है।

मायके में भी और ससुराल में भी लड़की को परिस्तिथियों से सामंजस्य स्थापित करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। ससुराल में कदम रखते ही उसकी अग्निपरीक्षा शुरु हो जाती है। ससुराल के हर व्यक्ति की आज्ञा का पालन करने को उसे कटिबद्ध होना पड़ता है। पंडित का उपदेश होता है कि तुम सास-ससुर की आज्ञा मानोगी और पति को साक्षात् भगवान जानोगी। ससुराल के सदस्यों की सोच होती है कि बहू इस घर में काम करने आई है आराम करने नहीं। हमारे समाज में इसी व्यवस्था को औरत की नियति माने जाने की परंपरा पर नुक्कड़ नाटकों में प्रहार किया जाता है। 'ओम् स्वाहा', 'सती', 'आग' आदि नुक्कड़ नाटकों में दहेज की भयावहता को प्रस्तुत किया गया है। यांत्रिक सभ्यता ने जिस वित्तीय व्यवस्था को जन्म दिया उसमें पैसा ही परमेश्वर है। पारिवारिक रिश्ते पैरों तले कुचले जाते हैं। इन सबका शिकार आखिर में एक औरत ही होती है। नारियों पर दहेज के नाम पर होने वाली कुरीतियों का चित्रण करने के साथ-साथ इनके विरुद्ध लड़ने का आह्वान भी इन नुक्कड़ नाटकों में किया जाता है। ऐसी समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले नुक्कड़ नाटकों का अंत निम्न प्रकार के आह्वान के साथ किया जाता है---

"जाग उठो, भई जाग उठो।
जलती नारी का तुम्हें ऐलान है।
तलाक पीड़ित का फरमान है।
दहेज पीड़ित की है ये पुकार।
करना है शोषकों का संहार।

नर-नारी में न अब भेदभाव हो।
जाग उठो , भई जाग उठो।"

लड़कियों को शिक्षित करने के लिए माता-पिता को प्रेरित करने का काम भी नुक्कड़ नाटकों में किया जाता है। नुक्कड़ नाटक 'पढ़ना लिखना सीखो' तथा 'औरत' आदि इसके उदाहरण हैं। घर बाहर हर कहीं होने वाले शोषण को सहकर अभिशप्त जीवन जीने वाली नारी का वास्तविक खाका 'ये भी हिंसा है' नामक नुक्कड़ नाटक में खींचा गया है।

4. दलितों से संबंधित समस्याएँ:--

दलितों से संबंधित सामाजिक समस्याओं को भी नुक्कड़ नाटकों में प्रमुखता से दिखाया जाता है। सदियों से चले आ रहे जातीय उत्पीड़न की समाप्ति के लिए सामाजिक और शासकीय तौर पर अनेक प्रयास किए जाते हैं। तब नुक्कड़ नाटक भला इस से अछूते कैसे रह सकते हैं। लेकिन फिर भी उच्च वर्ग की जातीय मानसिकता को बदलना इतना सरल नहीं है। उच्च वर्ग की इसी मानसिकता को बदलने का प्रयास निशांत नाट्य मंच के नुक्कड़ नाटक 'टुकड़ा नहीं पूरी रोटी लेंगे' में अत्यंत सराहनीय ढंग से किया गया है। भारत में दलितों के प्रति होने वाले अत्याचारों को चित्रित करके उसके विरुद्ध आवाज उठाने में नुक्कड़ नाटकों ने अहम भूमिका निभाई है। इस कोटि में आने वाले नुक्कड़ नाटकों में 'हरिजन दहन', 'नई बिरादरी' आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दलितों की त्रासदीपूर्ण जिंदगी को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करने वाली मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' का नाट्य रूपांतर जागृति मंच द्वारा 'एक गाँव की कहानी' के नाम से किया गया है। हमारे समाज में व्याप्त जातीय भेदभाव की भावना को दूर करके निम्न तबके के लोगों को ऊपर उठाने का प्रशंसनीय प्रयास नुक्कड़ नाटककारों की ओर से किया जाता रहा है।

नुक्कड़ नाटकों में प्रस्तुत अन्य समस्याएँ:--

स्त्रियों एवं दलितों की इन समस्याओं के अतिरिक्त परिवार नियोजन, जनसंख्या विस्फोट, शराब की लत, पानी आदि की समस्याओं को भी नुक्कड़ नाटकों में प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाता है। असगर वजाहत के 'पूरा प्यार', गिरिराज शरण अग्रवाल के 'बीस बीघा जमीन' तथा चंद्रकिरण सौनरेक्सा के 'इंतजार' आदि नुक्कड़ नाटकों में परिवार नियोजन की बात समझाई गई है। जन नाट्य मंच के नुक्कड़ नाटक 'काफिला अब चल पड़ा है' में पानी का मुद्दा उठाया गया है।

निष्कर्ष:-

सभी साहित्यिक विधाओं में सामाजिक गतिविधियों का प्रतिफलन ही बिंबित होता है। नुक्कड़ नाटक भी इस कथ्य का अपवाद नहीं हैं। समाज में व्याप्त लगभग सभी समस्याओं का उल्लेख अपने नाटकों के माध्यम से करने में हिंदी के नुक्कड़ नाटककार सफल रहे हैं। नुक्कड़ नाटक का कथ्य अपनी नवीनता के क्रम में जन जीवन के साथ एक साक्षात्कार है। नुक्कड़ नाटक का कथ्य सामाजिक यथार्थ को व्यापकता में ग्रसण करता है। आम जनता, किसान-मजदूर, नारी एवं दलित वर्ग के लोग आपनी मूल संवेदनाओं के साथ नुक्कड़ नाटकों में प्रस्तुत हुए हैं।

संदर्भ:-

1. डॉ० सनत कुमार व्यास , नुक्कड़ नाटक; परंपरा और प्रयोग, अंक 4, पृष्ठ 153

2. हिंदी रंगकर्म, दशा और दिशा, जयदेव तनेजा, पृष्ठ 143

3. हिंदी नाटक और रंगमंच, ब्रेख्त का प्रभाव, डॉ० सुरेश वशिष्ठ, पृष्ठ 52

4. उत्तर गाथा, अप्रैल-जून-1983, अरुण शर्मा, पृष्ठ 71

5. सफदर हाशमी, व्यक्तित्व कृतित्व, पृष्ठ 40